ISSN-0976-9196
BHASVATI
PEER REVIEWED
A REFEREED JOURNAL
U.G.C. - CARE LIST NO.
Indian Language-100
(Previously UGC Journal
No. 40760)

भास्वती

(षाण्मासिकी शोधपत्रिका)

सम्पादक :
प्रो० उमारानी त्रिपाठी
संस्कृतविभागाध्यक्ष
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठम्, वाराणसी

षट्त्रिंशदङ्क
एवं
सप्तत्रिंशदङ्क

संयुक्ताङ्क { जुलाई-दिसम्बर 2019
जनवरी-जून 2020

अनुक्रम

क्रम	*शोधपत्र-विषय*	*लेखक*	*पृष्ठ*
1.	प्रश्नोपनिषदि सृष्टिविज्ञानम्	प्रो0 उमारानी त्रिपाठी	1
2.	बहुशास्त्रज्ञः कालिदासः	डॉ0 आशा सिंह रावत	6
3.	मीमांसादर्शन में धर्म का स्वरूप	प्रो0 मुरली मनोहर पाठक	20
4.	भारत में शक्ति-पूजा की परम्परा	प्रो0 राजेश्वर मिश्र	25
5.	संस्कृत एवं सुशासन	प्रो0 नीरज शर्मा	35
6.	दूतरूप में श्रीकृष्ण	प्रो0 श्रीप्रकाश राय	39
7.	वैश्विक आपदा के समाधानार्थ स्वप्रबन्ध की अपरिहार्यता : वैदिक दर्शन के आलोक में	डॉ0 अनीता सेन गुप्ता	44
8.	'ऐतरेयारण्यक' में सृष्टि-प्रक्रिया	डॉ0 दानपति तिवारी	49
9.	आधुनिक संस्कृतसाहित्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजनविमर्श	डॉ0 बाबूलाल मीना	53
10.	'शिशुपालवध' महाकाव्य में अर्थोपार्जन के स्रोत	डॉ0 सीमा यादव	67
11.	'रघुवंश' महाकाव्य में चिकित्सा-विद्या	डॉ0 अनीता	71
12.	पुराणों में काशी का भौगोलिक परिदृश्य	डॉ0 दीपक कुमार	77
13.	निरुक्त में मन्त्रार्थविषयक कौत्स का अभिमत एवं खण्डन	डॉ0 हेरम्ब पाण्डेय	86
14.	वैदिक वाङ्मय में वास्तु-विज्ञान	डॉ0 भास्कर प्रसाद द्विवेदी	90
15.	आधुनिक संस्कृत साहित्य की विविध विधाएँ : एक अवलोकन	डॉ0 सुधा त्रिपाठी	94
16.	पर्यावरणीय संकट एवं वैदिक समाधान	डॉ0 स्मिता शर्मा	102
17.	पुराणों में जम्बूद्वीप का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक चित्रण	डॉ0 दीपक कुमार	106
18.	तैत्तिरीय उपनिषद् के शिक्षादर्शन की प्रासंगिकता	डॉ0 सन्त कुमार मिश्र	113
19.	मुहूर्तों का स्वरूप एवं महत्त्व	डॉ0 सन्त प्रकाश तिवारी	121
20.	भूगोल विद्या के जनक : ऋषि अथर्वा	डॉ0 योगेन्द्र कुमार	127
21.	'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में नैतिक उपदेश	अंकिता प्रजापति	132
22.	औपनिषद अद्वैततत्त्वविमर्श	रंजना सिंह	137
23.	'याज्ञवल्क्य स्मृति' में प्रायश्चित्तविधान	डॉ0 सुषमा शुक्ला तिवारी	143
24.	कोरोना के उपचार में 'चरकसंहिता की उपयोगिता	निधि दूबे	149
25.	'शुक्लयजुर्वेद' में पर्यावरण	नेहा सिंह	155
26.	तैत्तिरीयोपनिषद् में प्राणतत्त्व	रत्नावली चौबे	160
27.	Notes on the Viravalitantra	Dr. Mark Dyczkowski	164

❒

संस्कृत एवं सुशासन

प्रो0 नीरज शर्मा*

प्राचीन भारत में लोककल्याण के लिए आचार्यों ने राजकार्य सम्बन्धी विभिन्न प्रावधान सुनिश्चित किये। प्रजा के प्रति राजा का पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। कौटिल्य ने लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। प्रजा के हितों के अनुकूल ही राजव्यवस्था का संचालन और लोकहित की सुरक्षा राज्य का प्राथमिक कर्तव्य है। कौटिल्य ने नागरिकों के आचरण तथा राजव्यवस्था में शुचिता तथा समृद्धि के लिए विभिन्न प्रवृत्तियों-गतिविधियों की व्यापक सूची प्रस्तुत की है, जिसके अन्तर्गत राज्य तथा नागरिकों की सुरक्षा, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कार्यों का समावेश किया गया है। कौटिल्य ने लोककल्याण के लिए राज्य को धर्म, अर्थ तथा काम के बीच सन्तुलन स्थापित करने का निर्देश दिया है। राज्य में विभिन्न विधाओं तथा शिक्षाओं के विकास के भी प्रावधान किये हैं। राज्य में प्रजा का हित ही सर्वोपरि होना चाहिए। यही शासन की प्राथमिकता है। प्रजा का सुख ही राजा का सुख होता है। स्वयं को अच्छे लगने वाले कार्य का सम्पादन करने में राजा का हित होना चाहिए—

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।[1]

राज्य के कार्य को प्रधानतः निम्नलिखित शीर्षकों से समझा जा सकता है—सैन्य-संगठन तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा एवं आन्तरिक विद्रोह का दमन, कानून और व्यवस्था कायम रखना, सामाजिक व्यवस्था का रक्षण, राज्य की सीमाओं का विस्तार, कृषि-व्यवस्था का विकास, पशुधन का सम्वर्धन, व्यापार तथा यातायात का विकास, वन्योपज-खनिज पदार्थों का प्रबन्धन, प्राकृतिक आपदाओं से रक्षण, न्याय-व्यवस्था, दण्डनीति, शैक्षणिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ करना।

महाभारत में भी लोकहित का सम्पादन राजा अथवा शासक का प्राथमिक कर्तव्य माना गया है। प्रजा की सुरक्षा और अन्य प्राणियों की रक्षा का दायित्व शासन का होता है। धर्मानुसार प्रजापालन करते हुए राज्य में प्रजा भयमुक्त रहे, सुखी रहे तो ही राज्य विकास करता है—

रक्षणं सर्वभूतानाम् इति क्षात्रं परं मतम्।[2]
दत्त्वा अभयं स्वयं राजा प्रमाणं कुरुते यदि।
स सर्व सुखकृद ज्ञेय प्रजाधर्मेण पालयन।।[3]

राजा और प्रजा का पाल्य-पालक सम्बन्ध होता है। वही शासन श्रेष्ठ है जहाँ गरीबों का उत्पीड़न, शोषण नहीं होता तथा बलात्कार जैसी घृणित घटनाएँ नहीं होतीं—

यत्र नास्ति बलात्कारः स राजा तीव्र शासनः।
भीरेव नास्ति सम्बन्धी दरिद्रं यो बुभूषते।।[4]

** अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।*

राज्य में संस्थायी विकास के लिए आर्थिक समृद्धि की निरन्तरता आवश्यक है, अतः कोष-व्यवस्था के सुदृढ़ींकरण के लिए आचार्य कौटिल्यू , शुक्र, कामन्दक आदि सभी ने कर अथवा बलि की व्यवस्था का प्रावधान किया। आय और व्यय की व्यवस्था के लिए कौटिल्य ने प्रशासन-तन्त्र में समाहर्ता, सन्निधाता, पण्याध्यक्ष, आकराध्यक्ष, पोतवाहाध्यक्ष, मानाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष, शुल्काध्यक्ष आदि तथा कृषि-व्यवस्था के लिए सीताध्यक्ष की नियुक्ति का प्रावधान किया है। सभी अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने क्रमशः दैनिक, मासिक, वार्षिक तथा बहुवार्षिक कार्यों, लक्ष्यों तथा क्रियान्वित योजनाओं का प्रतिवेदन तैयार रखें एवं यथासमय राजा के समक्ष प्रस्तुत करें। आचार्य शुक्र भी इस व्यवस्था का अनुमोदन करते हैं।[5]

कौटिल्य ने राजस्व सम्बन्धी अभिलेखों में हेराफेरी करके धन का गबन करने के 40 मार्ग बताये हैं, जिनका नियन्त्रण आवश्यक है। लोककल्याण के लिए आर्थिक समृद्धि परमावश्यक है तथा आर्थिक विकास के लिए भ्रष्टाचार से मुक्ति अपरिहार्य है। वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार की चुनौती अत्यन्त गम्भीर है तथा इस सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय विचारों की प्रासंगिकता अनुसन्धेय है।

लोककल्याण के सम्बन्ध में ललित साहित्य में भी अनेक सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं, जिनमें राजाओं की प्रजापालक भूमिका, उनके लोककल्याणकारी कार्य तथा महान लोकहित के दर्शन और चिन्तन का उल्लेख प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास के नायक दुष्यन्त, रघु अथवा भारवि के युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पात्र प्रासंगिक कथाओं में लोकोपकारी चरित्र को प्रकट करने वाले वर्णित हैं।

'रघुवंश' महाकाव्य में कवि ने अपनी मान्यताओं एवं धारणाओं के अनुसार प्रशासनिक एवं सामाजिक आदर्श भी प्रस्तुत किये हैं। रघुवंशी राजाओं के वर्णनों में कालिदास ने आदर्श शासकों का चित्रण करने के साथ-साथ प्रजा के प्रति उनके कर्तव्यों का विस्तार से उल्लेख किया है। राजा लौकिक सुखों के उपभोग के लिए नहीं, अपितु वह प्रजा के हित के लिए शासन करता है। वह प्रजा का कल्याण करने के लिए उनसे कर लेता है—

प्रजानामेय भूत्यर्थं स ताभ्यः बलिमग्रहीत्।[6]

वह प्रजा को विनीत बनाता है, उनकी रक्षा करता है और उनका भरण-पोषण कराता है, अतः वह उनका पिता है—

प्रजानां विनयाधानात् रक्षणादभरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवल जन्म हेतवः।।[7]

वह प्रजा का रंजन करने से राजा कहलाता है—

तथैव सोऽभूवन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्।[8]

प्रजा का रक्षा ही क्षत्रिय राजा का परम कर्तव्य है—

क्षतात् किल त्रायत इत्युदयः क्षत्रस्य शब्द भुवनेषुः रूढः।[9]

'रघुवंश' महाकाव्य में वर्णन आया है कि राजा दिलीप लोककल्याणकारी उच्च मानव-मूल्यों से मण्डित व्यक्तित्व वाले थे, जैसा कि उनके विषय में कहा गया है कि—

त्यागाय संभतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशस विजिगीषणां प्रजायै गृहमधिनाम्।।[10]

अर्थात् त्याग और धर्म के लिए ही धन को एकत्र करते थे, सत्यवादी एवं मितभाषी थे, यश-प्राप्ति के लिए ही विजय की अभिलाषा करते थे तथा सन्तान-प्राप्ति के लिए ही विवाह करने वाले थे। ऐसे अनुपम मानव-मूल्यों से अलंकृत वंश-परम्परा वाले राजा दिलीप का वर्णन करना चाहता हूँ। राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिए ही उनसे कर (आय का छठा भाग) उसी प्रकार लेते थे, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा अत्यल्प जल लेकर लोककल्याणार्थ हजार गुना जल वर्षा के रूप में लौटा देता है। राजा दिलीप लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए ही अपराधियों के अपराध के लिए अनुकूल दण्ड देते थे। वे यज्ञ करने के लिए प्रजा से वैसे ही कर लेते थे, जैसे इन्द्र अन्नोत्पादन के लिए अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं।

'शिशुपालवध' महाकाव्य में भी श्रीकृष्ण द्वारा देवर्षि नारद के भूतल पर आगमन का प्रयोजन पूछे जाने पर देवर्षि जगत-पालक श्रीकृष्ण से कहते हैं कि ''यदि आप लोक-द्रोहियों का वध करने के लिए स्वयमेव प्रवृत्त हैं, फिर भी मैं लोकहितकारी सन्देश को निवेदन करता हूँ।''[11] इस प्रकार सभी लोकोपकारक कार्यों में प्रमुख इस समय शिशुपाल का वध है। यहाँ पर प्रथमतः श्रीकृष्ण का एवं द्वितीयकः इन्द्र का सर्वप्रमुख कर्तव्य लोककल्याण एवं शान्ति की स्थापना है, जो राज्य के विकास के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण है, जिसके लिए मानव ही नहीं, अपितु देवेन्द्र एवं उपेन्द्र को भी जागरूक दिखाया गया है।

महान कार्य आरम्भ करने पर भी शान्तचित्त बने रहना भी राष्ट्र की उन्नति के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण राजनैतिक मूल्य है। 'नैषधीयचरित' महाकाव्य में राजा के लिए कहा गया है कि जिस वसुन्धरा का स्वामी मर्यादाविहीन है, वह वसुधा निवास योग्य नहीं है।[12] क्योंकि मर्यादाविहीन स्वामी लोककल्याण के कार्यों की तरफ कोई ध्यान नहीं देता तो राज्य के विकास के बारे में क्या कहा जा सकता है।

सुशासन और विकास के लिए राज्यतन्त्र और शासन ही सर्वाधिक उत्तरदायी होता है, क्योंकि यही संस्था विकास की नीतियों के निर्धारण और उनके क्रियान्वयन का उपकरण है। 'संस्कृत वाङ्मय' में निहित ज्ञान-परम्परा धर्मकेन्द्रित है। अर्थ एवं काम उसी के द्वारा प्राप्त होते हैं, अतः राजा अथवा शासन को अपने आचरण को अनुकरणीय बनाते हुए सदाचारपूर्वक लोककल्याण का अनुष्ठान करना चाहिए। लेककल्याण के ही द्वारा राजा के समस्त मनोरथ पूर्ण होते हैं—

यथा यथा ही पुरुषः कल्याणं कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्धयन्ते नात्र संशयः।।[13]

सत्य की प्रतिष्ठा ही शासन का मूल है। इसके बिना सिद्धि नहीं होती तथा इसकी प्रतिष्ठा से सर्वत्र आनन्द होता है—

न हि सत्याद्व्रते किंचिद् राज्ञां वै सिद्धिकारकम्।
सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह न नन्दति।।[14]

महर्षि अत्रि पाँच यज्ञों के रूप में शासन का कर्तव्य प्रतिपादित करते हैं। तदनुसार दुष्टों को दण्ड, सज्जनों का मान, न्यायपूर्वक कोष-वृद्धि, अपक्षपात तथा राष्ट्र-रक्षा ही राज्य के महायज्ञ हैं—

दुष्टस्यदण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोषस्य च सम्प्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पंचौव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्।।

सतत विकास का उद्देश्य भारतीय चिन्तन-परम्परा में सुशासन के उद्देश्य से एकाकार होते हैं, जहाँ सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनीन कल्याण का चिन्तन सन्निहित है।

सन्दर्भ :

1. अर्थशास्त्र 1.18
2. महाभारत, शान्तिपर्व 120.3
3. महाभारत, शान्तिपर्व 139-102
4. महाभारत, शान्तिपर्व 139.97
5. शुक्रनीति 2.95-96
6. रघुवंश महाकाव्य 1.18
7. रघुवंश महाकाव्य 1.24
8. रघुवंश महाकाव्य 4.12
9. रघुवंश महाकाव्य 2.53
10. रघुवंश महाकाव्य 1.7
11. शिशुपालवध 1.41
12. नैषधचरित 1.28
13. महाभारत, उद्योगपर्व 35.41
14. महाभारत, उद्योगपर्व 56, 57

❑